© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

वेदों में ओषधि–विज्ञान : एक परिशीलन

रामानन्द (शोधच्छात्र)
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा–विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेद अनन्त ज्ञान राशि का अक्षय भण्डार है। जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिससे सम्बद्ध विषय का विवेचन वेदों में न हुआ हो। वेदों में जिन विषयों का विवेचन हुआ है, उन्हीं में से एक विषय है–आयुर्वेद। आयुर्वेद का मूल है–ओषधि–विज्ञान। ओषधि के अन्तर्गत–वृक्ष, वनस्पति, लता, गुल्म, अन्न, खनिज, जल तथा जीवन को धारण करने वाले समस्त तत्त्वों का समावेश है। ओषधि शब्द एक बहुधा प्रयुक्त होने वाला शब्द है, जिसका सामान्य अर्थ प्रायः 'जड़ी–बूटी' के रूप में जनसामान्य में प्रचलित है, किन्तु ओषधि को मात्र 'जड़ी–बूटी' तक सीमित मान लेना एक भ्रान्ति है। अनेक आचार्यों ने इसकी शास्त्रीय व्युत्पत्तियाँ दी हैं जो इसके रहस्य को उद्घाटित करती हैं।

ओषधि शब्द 'ओष' पूर्वक 'धा' धातु (दुधाञ् धारण पोषणयोः) से 'कि' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न है[1] जो 'ओष' को धारण करने के कारण ओषधि कहलाता है। वस्तुतः 'ओष' रस को कहते हैं और रस के द्वारा ही आरोग्य का आधान होता है, इसलिये 'रस' को धारण करने वाला द्रव्य 'ओषधि' है–

ओषो नाम रसः सोऽस्यां धीयते यत्तदोषधिः।
ओषादारोग्यमाधत्ते तस्मादोषधिरोषधः ।।[2]

शतपथब्राह्मण में भी ओषधियों को दोष नाशक कहा गया है।[3] आचार्य यास्क ने भी कहा है कि–जो शरीरगत रोगों को नष्ट कर देती है, रोगी जिसे धारण करते हैं तथा जो दोषों (त्रिदोष–वात, पित्त, कफ) को नष्ट कर देती है उसे ओषधि कहते हैं।[4] वेद में ओषधि शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में हुआ है। आचार्य सायण ने इसकी व्युत्पत्ति दी है–**'ओषः पाकः आसु धीयते इति ओषधयः'** अर्थात् जिनके फल पकते हैं उन वनस्पतियों को ओषधि कहते हैं।[5] अमरकोषकार ने ओषधि के अन्तर्गत फलकर पकने के बाद नष्ट हो जाने वाले सम्पूर्ण उद्भिजों (धान, चना,जौ, गेहूँ आदि) को परिगणित किया है।[6] आचार्य सुश्रुत ने ओषधि को रस और आहार का मूल स्रोत स्वीकार करते हुए कहा है कि आहार ही प्राणियों की उत्पत्ति, उनके बल, वर्ण तथा ओज का प्रधान कारण होता है। वह आहार षट् रसाश्रयी एवं रस द्रव्याश्रयी होते हैं। ओषधि ही द्रव्य है, अतः ओषधि ही मानवजीवनोत्पत्ति आदि का मूल है।[7]

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी ओषधि को अन्न एवं प्राणियों का आधारभूत कारण कहा गया है।[8] सुश्रुत आदि आचार्यों ने जीवनधायक समस्त द्रव्यों को ओषधि ही कहा है। ईश्वर ने मानव सृष्टि के पहले वृक्ष–वनस्पति इत्यादि प्राकृतिक तत्त्वों की रचना इसलिये की, क्योंकि उसे अपनी प्रिय सन्तान के लिये भोजन, प्राणवायु, आच्छादन, छाया तथा रोगग्रस्त होने पर वनस्पतियों से प्राप्त ओषधीय तत्त्वों की व्यवस्था करनी थी। मानव इन्हीं वनस्पतियों की देखरेख में विकसित हुआ। भूख लगने पर उसने वृक्षों से फल तोड़कर खा लिये, उसकी छाल तथा पत्तों को अपना आच्छादन बनाया, उसकी छाया में धूप, वर्षा इत्यादि से अपनी रक्षा की तथा उसके पत्र, पुष्प, फल, छाल तथा मूल के द्वारा अपनी व्याधियों को दूर कर अपनी जीवनरक्षा की।

प्रारम्भ से ही मानव का जीवन वनस्पतिमय था। वन्य प्रदेशों में वनस्पतियों का बाहुल्य था ही, ग्रामीण क्षेत्रों में भी उनकी अधिकता थी। इस कारण मनुष्य अपनी दैनन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति उसी के माध्यम से करता था। दन्तधावन से लेकर आहर तक तथा वस्त्र से लेकर शय्या तक सभी में वनस्पति का ही प्रयोग करता था। स्नान, अनुलेपन, अंगराग और तैल भी इन्हीं से बनते थे। स्त्रियाँ अपने श्रृंगार–प्रसाधन में इनका ही उपयोग करती थीं। जब मानव थोड़ा और विकसित हुआ तो गृह–निर्माण के नाना उपकरणों, पात्रों आदि में इन्हीं का प्रयोग करने लगा। उसने लेखनकार्य में वृक्षों की महीन छाल का कागज के रूप में तथा अनेक रंजक वनस्पतियों के रस का स्याही के रूप में प्रयोग किया।

यज्ञों में वनस्पतियों का विशेष उपयोग था। यज्ञशाला के निर्माण से लेकर यज्ञ की परिधि, यूप तथा विविध पात्रों तक में विभिन्न वनस्पतियों का व्यवहार था। सोम तो यज्ञों में एक प्रधान द्रव्य था ही जिसके कारण इसे ओषधिराज का विशेषण प्राप्त हुआ है। ओषधियों का व्याधिनिवारण में प्रयोग मानव सभ्यता के आदिमयुग से ही निरन्तर जारी है। मानवजीवन की सुख–समृद्धि में वनस्पतियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। यही कारण है कि वैदिक वाङ्मय में ओषधि–वनस्पतियों की स्तुति में अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं। सर्वप्रथम ऋग्वेद के ओषधिसूक्त (ऋग्वेद 10/97/1 से 23) से हमें ओषधि, उनके भेद, चिकित्सकीय प्रयोग एवम् ओषधियों की विभिन्न उपयोगिताओं के बारे में जानकारी मिलती है। इसके पश्चात् यजुर्वेद और तत्पश्चात् अथर्ववेद में हमें ओषधियों का बृहद् विवरण प्राप्त होता है। ओषधियों का आकर ग्रन्थ होने के कारण ही अथर्ववेद को भिषग्वेद या भैषज्यवेद भी कहा जाता है। चरक और सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद बताया है।[9] चरक के अनुसार–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद इन चारों वेदों में अथर्ववेद को ही आयुर्वेद की आत्मा कहनी चाहिये क्योंकि अथर्ववेद में कहे हुए स्वस्त्ययन, बलिदान, मंगलकर्म, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास और मन्त्र इत्यादि से ही चिकित्सा का निर्देश किया गया है।[10] इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद का उद्गम स्रोत अथर्ववेद ही है। यद्यपि

ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेद में भी आयुर्वेद–विषयक पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, तथापि आयुर्विषयक ओषधियों का सर्वा›ीण विवेचन अथर्ववेद में ही किया गया है। आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद अत्यन्त महनीय ग्रन्थ है। इसमें आयुर्वेद के प्रायः सभी अंगों और उपांगों का विस्तृत वर्णन मिलता है उनमें भैषज्य, शरीरांग, दीर्घायुष्य, नीरोगता, तैज, वर्चस, वशीकरण, वाजीकरण, विविध ओषधियों के नाम, उनके गुण–कर्म, विविध चिकित्सा–पद्धतियाँ, सूर्य चिकित्सा, जल–चिकितसा, विष–चिकित्सा, प्राण–चिकित्सा, शल्य–चिकित्सा तथा विभिन्न रोगनाशक मणियाँ इत्यादि हैं। गोपथ–बाह्मण में अथर्ववेद के मन्त्रों को आयुर्वेद से सम्बद्ध बताया गया है, साथ ही कहा गया है कि अंगिरस का सम्बन्ध आयुर्वेद और शरीर विज्ञान से है। अंगों के रसों अर्थात् तत्त्वों का वर्णन किये जाने के कारण वह अंगिरस कहलाता है। अंगों से जो रस निकलता है वह अंगरस है, उसी को अंगिरस या आंगिरस कहा जाता है–**'एतत् अंगरसं सन्तम् अंगिरा इत्याचक्षते'**[11] अतः प्राणविद्या या जीवनविद्या अथर्ववेद से ही संबंधित है। प्राचीन महर्षियों ने वर्ण, पत्र, पुष्प, फल, कांड आदि अवयवों, उद्भवस्थानों तथा गुणकर्म का सूक्ष्म निरीक्षण करके वनस्पतियों को विभिन्न वर्गों में स्थापित किया है। सामान्यतः औद्भिद् द्रव्य–वनस्पति, वानस्पत्य, वीरुध तथा ओषधि इन चार वर्गों में विभाजित किये गये हैं।

ऋग्वेद में ओषधि और वनस्पति के अन्तर्गत ही सबको परिगणित किया गया है।[12] बड़े वृक्षों के लिये 'वनस्पति' शब्द प्रयुक्त होता है जबकि अपेक्षाकृत छोटे वृक्ष 'वानस्पत्य' कहलाते हैं, इसी प्रकार छोटे पौधों को 'ओषधि' और लता, गुल्मादि को 'वीरूध' कहा जाता है। चरकसंहिता में भी औद्भिद् द्रव्य के ये ही चार भेद वनस्पति, वानस्पत्य, ओषधि एवं वीरुध कहे गये हैं किन्तु वहाँ पर जिनमें केवल फल दृष्टिगोचर हों उन्हें वनस्पति, जिनमें फल और फूल दोनों दृष्टिगोचर हों उन्हें वानस्पत्य, फल पक जाने पर जिनका अन्त हो जाय उन्हें ओषधि तथा जो लता के रूप में फैले हों उन्हें वीरुध कहा गया है।

द्रव्याणि पुनरोषधयः से 'द्रव्य' और 'ओषधि' में अभेद बताने वाले आचार्यसुश्रुत ने 'द्रव्य' के सर्वप्रथम स्थावर और ज›म दो भेद बताए हैं। तत्पश्चात् स्थावर द्रव्यों के वनस्पति, वृक्ष, वीरूध तथा ओषधि ये चार भेद कहे गये। ज›म के भी चार भेद होते हैं–जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज। चरक ने ओषधि को 'औद्भिद्' अर्थात् उद्भिज का ही एक भेद कहा गया है। भेल संहिता में भी तृण, लता, वृक्ष और वनस्पति को औद्भिज्ज कहा गया है।

सामान्यतः ओषधि सिद्ध, असद्धि, शीत, उष्ण, द्रव, घन, ईषदुष्ण, स्नेहयुक्त तथा स्नेहरहित इत्यादि अनेक भेदों वाली होती हैं। तथापि रोग एवम् अवस्था के अनुसार प्रयोग किये जाने योग्य इसके सात भेद होते हैं।

चूर्ण शीतकषायश्च स्वरसोऽभिषवस्तथा ।

फाण्टः कल्कस्तथा क्वाथो यथावत्तं निबोध मे।।[13]

अर्थात् चूर्ण, शीतकषाय, स्वरस, अभिषव (मद्य), फाण्ट, कल्क, तथा क्वाथ। सूक्ष्मातिसूक्ष्म पीसे गये द्रव्य को 'चूर्ण' कहते हैं। यह ग्रहणीरोग, आमविकार, व्रण तथा अंजन आदि कर्मो में प्रयुक्त होता है। अन्तरिक्ष जल के साथ मिलाये गये शीतद्रव्य को 'शीतकषाय' कहते हैं। यह पित्त, ज्वर दाह, रक्त, विष, मूर्च्छा तथा मद को नष्ट करता है।

शीतकषाय द्रव्य यदि रात्रि में पानी में रखकर अच्छी प्रकार सिद्ध किया जाता है, तब वह 'अभिषव' कहलाता है। जिसका अग्निबल तथा क्षोभ शान्त हो जाता है तथा जो सौम्य है ऐसे व्यक्ति को स्वरस के साथ 'अभिषव' का प्रयोग करना चाहिये। द्राक्षा, इक्षु तथा आँवले इत्यादि का निष्पीडन करके जो रस निकाला जाता है उसे 'स्वरस' कहते हैं। यह अन्य ओषधियों के साथ मिलाकर नानाव्याधियों में दिया जाता है। द्रव्य को वर्षाजल के साथ पकाकर, आधा जल शेष रहने पर अथवा एक बार उबाल आकर झाग आने पर निर्मित क्वाथ को 'फाण्ट' कहते हैं। यह अल्पदोष एवं बल वाले बालक तथा मृदुव्याधि में प्रशस्त माना गया है। द्रव्य को पानी के साथ पीसकर 'कल्क' बनाया जाता है और पान अर्थात् पेय, लेप तथा अवलेह के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जो शुद्ध द्रव्य सेवन करने पर कठिनता से पचने वाला होता है, वही तीव्र अग्नि पर पकाये जाने के बाद चतुर्थांश शेष रहने पर 'क्वाथ' कहलाता है। इसका अवस्था एवं बल से सम्पन्न गुरुव्याधि में प्रयोग किया जाता है।

'औषधि' और 'औषध' शब्द सामान्यतः एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जहाँ पर ओषधि शब्द उद्भित् जगत् के लिये प्रयुक्त होता है वहीं औषधि या औषध उसके विकार अर्थात् उसके प्राप्तव्य के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। घृततैलादि (द्रव्य) तिलसर्षपादि (ओषधि) से प्राप्त होने के कारण उसके विकार हैं। अमरकोषकार ने कहा भी है कि–**'औषध्यो जातिमात्रे स्युः अजातौ सर्वमौषधम्'** अर्थात् 'ओषधि' शब्द जातिमात्र (व्रीहि, यव चना आदि) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जबकि जाति से भिन्न 'द्रव्य' (दवा आदि) के रूप में औषध का व्यवहार किया जाता है।[14]

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति में प्राचीनकाल से ही 'तुलसी' के पौधे को मध्य–आँगन में लगाने की जो परम्परा रही है वह केवल श्रद्धा एवं भक्ति के कारण ही नहीं अपितु इसका एक वैज्ञानिक कारण भी है। वह यह है कि 'तुलसी' का पौधा कई मीटर की परिधि में रोगाणुओं को मार देता है और उन्हें पनपने नहीं देता। इसी प्रकार हम जो पीपल के वृक्ष को जल चढ़ाते हैं वह केवल श्रद्धावशात् नहीं अपितु इसलिये क्योंकि हमारे शरीर और पीपल के बीच जल के स्पर्श के द्वारा एक चक्र का निर्माण होता है और पीपल में स्थित ओषधीय गुणों को हम आत्मसात् कर लेते हैं। प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्य देते समय ताम्रपात्र से गिरते हुए जल और पृथ्वी के बीच सूर्य के किरणों

का जो स्पर्श होता है वह हमारे शरीर में दोनों के ओषधीय तत्त्वों को आरोपित करता है। भोपाल में हुई गैस त्रासदी के बाद एक रोचक बात यह हुई कि जिन आर्यसमाजी घरों में नित्य यज्ञ होता था, वहाँ पर उस विनाशकारी गैस (मेथिल आइसोसायनाइड) का नगण्य प्रभाव हुआ। अर्थात् यज्ञ केवल एक कर्मकाण्ड ही नहीं है अपितु हमारी जीवनरक्षा की कुंजी है। दीपावली पर सरसों के तैल का दीपक जलाने की जो परम्परा रही है वह इसलिये नहीं कि हमारे देश में सरसों के तेल की अधिकता है, अपितु इसलिये क्योंकि सरसों के तेल में रोगाणुओं को नष्ट करने की शक्ति पायी जाती है। इस प्रकार ओषधि–विज्ञान या आयुर्वेद कोई घास–फूस की चिकित्सा नहीं अपितु यह चेतन की, चेतन के द्वारा होने वाली चिकित्सा है।

आज के युग में जितनी तकनीकी प्रगति हुई है और चिकित्सा के नये–नये साधन आविष्कृत हुए हैं, उतनी ही नयी–नयी और प्राणघातक बीमारियाँ भी देखने को मिल रही हैं। यही कारण है कि आज का मानव फिर से आयुर्वेद, ओषधीय–चिकित्सा एवं योग की तरफ आशा भरी नजरों से देख रहा है। वस्तुतः प्राचीन आयुर्वेदीय चिकित्सा में ही वह विशेषता है कि उसका कोई विपरीत प्रभाव नहीं है तथा जो व्याधि को समूल नष्ट करने के साथ–साथ व्याधि के उत्पादक कारणों को भी नष्ट कर सकती है। विश्व की सबसे प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद आज भी मानव जाति की प्राणरक्षा कर रही है और न केवल भारत वर्ष अपितु सम्पूर्ण विश्व में ओषधि-विज्ञान की लोकप्रियता बढ़ती ही जा रही है।

सन्दर्भ–सूची

1. वामनशिवरामआप्टे कोश, पृष्ठ–231
2. काश्यपसंहिता खिलस्थान 3/27
3. ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन्।–शतपथ ब्राह्मण 2/2/4/5
4. ओषधयंः ओषद्धयन्तीति वा। ओषत्येना धयन्तीति वा। दोषं धयन्तीति वा।

   –निरूक्त 9/22 दुर्गाचार्य संस्कृतटीका, छज्जूराम शास्त्री
5. अथर्ववेद 6/95/3 पर सायणभाष्य
6. ओषधिः फलपाकान्ता स्यात्। अमरकोष 2/4/6
7. प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च, स षट्सु रसेष्वायत्तः

   रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः द्रव्याणि पुनरोषधयः।–सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान 1/26

8. ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुषः। अन्नाद् भूतानि जायन्ते। जायन्त्यन्नेन वर्धन्ते। अन्नभूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात् सर्वौषधमुच्यते।

—तैत्तिरोयोपनिषद् ब्रहमानन्दवल्ली, द्वितीय अनुवाक

9. इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य—सुश्रुत सूत्र 1/6

10. तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्याः वेदो ह्यावथर्वाणः—चरकसंहिता सूत्रस्थान 30/18

11. गोपथ ब्राह्मण 1/1/7

12. तमोषधीश्च वनिनश्चः।— ऋग्वेद 7/4/5

13. काश्यपसंहिता खिलस्थान 3/35

14. द्रव्यमात्रविवक्षायां तु 'औषध' शब्द प्रयोगः। 'सर्वम्' इत्यनेन घृततैलादिकमप्यौषधशब्दवाच्यम्।— अमर कोष की रामाश्रमीटीका 2/4/135